अध्यात्म - मनीषी श्री सुमनमुनि जी का सर्जनात्मक साहित्य

❑ डॉ. इन्दरराज बैद

अध्यात्म भारतीय संस्कृति का प्राण-तत्व है। विद्याओं में इससे बढ़कर कोई विद्या नहीं। तत्व से साक्षात्कार करानेवाले आध्यात्मिक बोध की उपलब्धि जीवन की श्रेष्ठ उपलब्धि है, जिसे प्राप्त करने के लिए साधक को अपने जीवन का हर पल समर्पित करना होता है। अहर्निश स्वाध्याय-निरत रहकर ज्ञान की उत्कृष्ट उपासना से आत्मा को उज्ज्वल करना ही अध्यात्म के पथ पर चलना है। आभ्यंतर तप के इस श्रेयस्कर मार्ग पर चरणन्यास करने की योग्यता सबमें नहीं होती, श्रद्धावान् संयमी साधक ही स्वाध्याय-तप की पात्रता रखता है। भगवद्गीता में उद्घोष है-"श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।" (४/३६) श्रमण-संस्कृति ने भी 'मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः' कहकर साधक की अर्हता को सुनिश्चित कर दिया है। ऐसे साधक-रत्नों में अग्रणी हैं मुनिवर श्री सुमनकुमार जी महाराज जो विगत पचास वर्षों से आध्यत्मिक पथ पर चलते हुए रत्नत्रयाराधना पूर्वक श्रमणत्व की श्रेष्ठता का समुद्घोष करते रहे हैं। आज उनकी दीक्षा की स्वर्ण जयंती की शुभ वेला में जब हम उनके साधनामय जीवन पर दृष्टिपात करते हैं, तो हम श्रद्धा और गौरव की पुनीत भावनाओं से अभिभूत हो उठते हैं। अपने संयम का दृढ़तापूर्वक पालन करते हुए, श्रद्धा-भक्ति के साथ ज्ञानोपासना का जो आदर्श उन्होंने उपस्थित किया है, वह परम स्तुत्य है। चिंतत, मनन और मंथन करके अध्यात्म का जो सारस्वत प्रसाद उन्होंने वितरित किया है, उसे देखकर सिद्ध होता है कि श्री सुमन मुनिजी सच्चे अर्थों में उपदेष्टा हैं, उपाध्याय हैं, वे उच्च कोटि के विद्वान् श्रमण हैं, जिन्होंने धार्मिक साहित्य के उत्तम ग्रंथों से जिन-शासन की अभिनंदनीय सेवा की है।

श्रमण-संघ के सलाहकार मंत्री मुनि श्री सुमनकुमार जी महाराज की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं:- श्रमणावश्यक सूत्र, तत्त्व चिंतामणि (संपादन), बृहदालोयणा-ज्ञान गुटका (संपादन) अनोखा तपस्वी श्री गैंडेरायजी महाराज, शुक्ल-स्मृति, शुक्ल ज्योति, पंजाब श्रमण-संघ गौरव आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज और शुक्ल-प्रवचन (चार भाग) इन ग्रंथों के अध्ययन से श्रद्धेय मुनिश्री के तीन रूप उभरकर सामने आते हैं, पहला तत्त्व-शिक्षक का रूप, दूसरा चरितलेखक का रूप और तीसरा साहित्यानुशीलक का रूप। मुनिश्री का वैदुष्य यद्यपि तीनों रूपों में झलकता है, फिर भी उनके तत्त्व-शिक्षक की स्पष्ट छाप उनके साहित्य में सर्वत्र देखी जा सकती है। जैन दर्शन की सैद्धांतिक कृतियों में ही नहीं, उनके जीवनी-साहित्य और संपादित साहित्य में भी उनका तत्त्ववेता-रूप स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। यह आवश्यक भी है, क्योंकि उनकी साहित्य-सर्जना हृदय-रंजन की नहीं, आत्म-रमण की प्रक्रिया है। जीवन चरितों में अथवा प्राचीन साहित्य के अनुशीलन में जहाँ कहीं भी उन्हें अवसर मिला है, जैन-दर्शन की बारीकियों को उजागर करने में तत्पर रहे हैं। उनके समग्र साहित्य का अध्ययन करनेवालों को भले ही पुनरुक्ति का आभास होता हो, पर किसी ग्रंथ को स्वतंत्र रूप से पढ़ने वाले पाठक की जिज्ञासा तो ऐसे ही लेखन से शांत हुआ करती है।

'प्रवचन दिवाकर' मुनिश्री सुमन कुमार जी महाराज का आगम-वेत्ता तत्त्व-शिक्षक का रूप प्रमुखतापूर्वक जिन कृतियों में उभरकर आया है, उनमें तत्त्व-चिंतामणि के तीन भाग, गणनीय और पठनीय हैं। जैन धर्म-दर्शन के आधारभूत सिद्धांतों का तात्विक विवेचन ही 'तत्त्व-चिंतामणि' का प्रतिपाद्य विषय है, जिसके संबंध में मुनिश्री का मंतव्य है: "आज के विज्ञान-युग में मनुष्य प्रत्येक वस्तुके विषय में अन्वेषणात्मक दृष्टिकोण और जिज्ञासा रखता है, अस्तु, उन जैन दर्शन के तत्त्वों को सर्वांगीण रूप में जानने और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देखने की उसके मन में उत्सुकता का उत्पन्न होना सहज ही है।" (तत्त्व चिंतामणि-१ की भूमिका) स्वाध्यायशील पाठक की इसी जिज्ञासा को शांत करने का सुष्ठु सुनियोजित प्रयास हुआ है तत्त्व चिंतामणि में, जिसके पहले भाग में पच्चीस बोलों की, दूसरे भाग में नव तत्त्वों की और तीसरे भाग में छब्बीस द्वारों की सम्यक् विवेचना प्रस्तुत की गई है। दरअसल, अपने पितामह गुरुवर श्रद्धेय पं. रत्न शुक्लचंद्रजी महाराज के ग्रंथ 'जैन धर्म मुख्य तत्त्व चिंतामणि' से प्रेरित होकर ही मुनिश्री ने जैन दर्शन-तत्त्वों का सरल भाषा-शैली में परिचय प्रस्तुत किया है। परिचय भी पर्याप्त विस्तृत है। केवल 'जीव' तत्त्व का विवेचन ही लगभग तीस पृष्ठों में किया गया है। आत्मा की शरीराबद्ध स्थिति को भारतीय वाङ्मय में जीव माना गया है। यह कर्ता भी है और कर्म फल का भोक्ता भी है। इसके समस्त भेदों पर मुनिश्री ने आगम-प्रमाण देते हुए व्यापक विचार किया है। अंत में, मोक्ष तत्त्व पर प्रकाश डाला है, जिसका जैन दर्शन में अपना वैशिष्ट्य है। निर्बन्ध स्थिति में आत्मा सिद्धत्व प्राप्त करती है। सर्व कर्म-विमुक्त आत्मा ही सिद्ध है, जिसका ज्ञान सद्प्ररूपणा, द्रव्य, क्षेत्र, स्पर्शन आदि द्वारों से किया जाता है। (दे. तत्त्व. चिंतामणि-२, पृ.१६२-१६४) सिद्धात्माओं के पंद्रह भेदों तीर्थ सिद्ध, अतीर्थ सिद्ध, तीर्थंकर सिद्ध, अतीर्थंकर सिद्ध, स्वयंबुद्ध सिद्ध आदि का स्वरूप भी समझाया गया है। मुनिश्री अपने तात्विक विश्लेषण को आगमिक उद्धरणों की पाद-टिप्पणियों द्वारा प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करते हैं। संक्षेप में यदि यह कहा जाय कि 'तत्त्व चिंतामणि' जिज्ञासु अध्येताओं के लिए किसी ज्ञान-कोश से कम नहीं, तो अत्युक्ति नहीं होगी।।

'शुक्ल प्रवचन' (चार खंड) भी तात्विक विवेचन से परिपुष्ट है। यद्यपि इन्हें प्रवचन की संज्ञा से अभिहित किया गया है, पर इन्हें सामान्य उपदेश की कोटि में न रखकर गंभीर अनुचिंतन-साहित्य का अंग मानता ही समीचीन प्रतीत होता है। विद्वान् संतश्री ने अध्यात्म-योगी श्रीमद्राजचंद्र के 'आत्मसिद्धिशास्त्र' को आधार बनाकर जो व्याख्यान दिये, उनका सारगर्भित आख्यान है 'शुक्ल प्रवचन'। पंजाब की जैन नगरी मलेर कोटला में अपने गुरुवर श्रद्धेय पं. रत्न श्री महेंद्रकुमारजी महाराज के चरणों में बैठकर सन् १९७४ के चातुर्मास में मंगलवाणी के माध्यम से जिस 'आत्मसिद्धि शास्त्र' का पारायण श्री सुमनमुनि जी महाराज ने आरंभ किया था, वही वर्षों बाद सन् १९८८ ई. में बोलारम (सिकंदराबाद) चातुर्मास में विशिष्ट आध्यात्मिक व्याख्यानों के रूप में परिणत हुआ। श्रद्धा और भक्ति के जलद निरंतर बरसते रहें तो चिंतन की भूमि को तो उर्वरा होना ही है। नैष्ठिक अध्ययन, सम्यक् चिंतन और आत्मिक मंथन से ही ज्ञान का अमृत प्राप्त होता है। केवल आत्म चर्चा करने से ज्ञान नहीं मिलता। कविवर जायसी ने कितना सुंदर कहा है:

'का भा जोग कथनी के कथे।
निकसै जीव न बिना दधि मथे।।"

आध्यात्मिक परिश्रम करनेवाले ही आत्मज्ञान के पथ पर निरंतर बढ़ते रहते हैं।

अस्तु; श्रीमद् राजचंद्र ने अपनी कृति 'आत्मसिद्धि शास्त्र' के ४३वें दोहे में आत्मा-संबंधी जो तथ्य गिनाए हैं, उसका शास्त्रीय आधार स्थापित करतेहुए मनीषी प्रवचनकार ने श्रमण-तत्त्वों का निरूपण किया है। ये समानान्तर छंद हैं:-

आत्मा छे, ते नित्य छे, छे कर्त्ता, निज कर्म।
छे भोक्ता, वली मोक्ष छे, मोक्ष उपाय सुधर्म।।

- (आत्मसिद्धि शास्त्र, ४३)

अत्थि जिओ तह निच्चा, कत्ता-भोत्ता य पुण्ण पावाणं।
अत्थि धुवं निव्वाणं, तदुवाओ अत्थि छट्ठाणेणं।।

- (प्रव. सारोद्धार द्वार १४८ गा.९४१)

'शुक्ल प्रवचन' के चतुर्थ खंड की भूमिका में वे श्रीमद्राजचंद्रजी के जैन-दर्शन से प्रभावित-प्रेरित होने की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं-"प्रवचन में श्रीमद्जी के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावों को यथातथ्य रूप में, यथाशक्य प्रतिपादन करने का प्रयास किया है, साथ ही आगम एवं आगमबाह्य ग्रंथों के संदर्भों से उसे पुष्ट करने तथा जिनेन्द्र भगवान एवं जिनवाणी के प्रति श्रीमद् के मन में रही आस्था, उनके आगमों/जैनधर्म/दर्शन के गहन अध्ययन, तदनुरूप बाह्य-आभ्यंतर क्रियानुष्ठान की सूक्ष्म व्याख्या को प्रकट करने का प्रयत्न किया है।" द्वितीय खंड की भूमिका में वे स्पष्ट शब्दों में घोषित करते हैं कि "आत्मसिद्धि तो विशेषतः 'अत्थिजीओ तह निच्चा' गाथा के आधार पर ही आधारित है।" पं. रत्न श्री सुमन मुनि जी निर्भीक वक्ता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। जहाँ भी और जब भी कोई दोष उन्हें सम्यक्त्व की अनुपालना में दृष्टिगत हुआ है, तो उन्होंने जिन शासन के व्यापक हितों का विचार करते हुए श्रावकों को सचेत करने की महनीय भूमिका निभाई है। श्रीमद् राजचंद्रजी कहते हैं:

आत्मज्ञान त्याँ मुनिपणुँ, ते साचा गुरु होय।
बाकी कुलगुरु कल्पना, आत्मार्थी नहीं जोय।।

- (आत्मसिद्धिशास्त्र, दो. ३४)

आशय यह है कि सच्चे आत्मार्थी के लिए कुलगुरु का कोई महत्त्व नहीं। मध्यकालीन जातिवाद की संकीर्णता से आधुनिक समाज उबरा नहीं है। यह दुर्भाग्य की बात है कि कुछ वर्ग अब तक भेदनीति पर चलते रहे हैं, जो किसी भी स्थिति में उचित नहीं है, आगम-सम्मत तो है ही नहीं। उपर्युक्त दोहे की व्याख्या करते हुए प्रवचनकार मुनिश्री कहते हैं – "इस पद में श्रीमद् ने.....जातिवाद के दुराग्रह का निराकरण करते हुए आत्मज्ञान-लक्षण की प्रतिपादना से सच्चे गुरु को व्याख्यायित किया है। आत्मज्ञान शून्य मुनि को कुलगुरु मानने की परंपरा मात्र कल्पना है। अमुक-अमुक जाति-कुल वाले को साधु-संघ में दीक्षित नहीं किया जा सकता; अमुक को साधु-दीक्षा तो दी जा सकतीहै, किंतु आचार्य-उपाध्याय आदि वरिष्ठ पद नहीं दिये जा सकते। ये अमुक जाति-विशेष के लिए नियत हैं, आदि। और यह मान्यता तो १६वीं शताब्दी तक भी बड़े गौरव के साथ दोहराई जाती रही है, तथा इससे समुदायों में वर्गीकरण/पृथकता को भी बढ़ावा मिलता रहा है।" (शुक्ल प्रवचन, भाग दो, पृ.५६४) महाराज साहब आगे फ़रमाते हैं - "जिन-धर्म में जाति को कहाँ महत्त्व दिया है? उसने तो समग्र मनुष्यों की एक ही जाति स्वीकार की है: 'मनुष्यजातिरेकैव'। श्रावक हरजसराय ने कहा है-जाति को काम नहीं, जिन मार्ग, संयम को प्रभु आदर दीनो।" (वही, पृ.५६५) इस प्रकार श्रीमद् राजचन्द्रजी ने आत्मसिद्धिशास्त्र में मानवीय समानता और एकता का जो स्वर उभारा है, उसी की पुष्टि सामयिक संदर्भों के साथ श्री सुमन मुनिजी अपनी व्याख्या में करते हैं। केवल श्रमण विचारधारा में ही नहीं, संपूर्ण भारतीय वाङ्मय में मानवीय समानता का समुद्घोष हुआ है। संस्कृत-साहित्य में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का जो आदर्श मुखरित हुआ है, वही तमिल-साहित्य में 'यादुम ऊरे यावरुम केळिर' (सब लोक अपने, सब लोग अपने) के संदेश में देखा जा सकता है। सबको अपना माननेवाली भारतीय संस्कृति में न कोई बड़ा है, न कोई छोटा; फिर कुल और जाति के नाम पर वर्गीकरण को कैसे उचित माना जा सकता है?

'शुक्ल प्रवचन' में भी जैन विचारों को जहाँ भी संदर्भ बना है, पर्याप्त विस्तार के साथ समझाया गया है। आत्मसिद्धि शास्त्र के १८वें दोहे में मान-विषयक बात कही है। उसका बहुत ही सुंदर विश्लेषण पंडित रत्न सुमन मुनिजी प्रस्तुत करते हैं। आगम-वाणी में, मान-संबंधी जो बारह भेद गिनाये गये हैं, उन पर प्रकाश डाल कर पाठकों को विनय की सीख दी गई है। ये भेद हैं: मान, मद, दर्प, स्तम्भ, गर्व, अत्युतक्रोश पर-परिवाद, उत्कर्ष, अपकर्ष, उन्नत, उन्नाम और दुर्नाम मनुष्य के पतन का मुख्य कारण अहंकार ही है, इसे त्याग कर ही आत्मा को उबारा जा सकता है। जैन संतों ने और विश्व के सभी विद्वानों ने अहंकार को त्याज्य माना है। तमिल संत तिरुवल्लुवर कहते हैं:

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं-मेरा, इस अहं भाव से जो ऊपर उठ जाएगा।
वह देवोपरि उच्च लोक को अनायास पा जाएगा।।

साहित्य-मनीषी सुमन मुनिजी ने दो साहित्यिक कृतियों का सुसंपादन विवेचन पूर्वक किया है। पहली है श्रावक-कवि हरजसराय की मुक्तक-काव्यकृति 'देवाधि देव रचना' और दूसरी है सुश्रावक लाला रणजीतसिंह कृत वृहदालोयणाज्ञान गुटका। दोनों ही प्रसिद्ध लोकप्रिय रचनाएँ हैं। 'देवाधिदेव रचना' में कवि तीर्थंकर प्रभु की स्तुति करता है। ८५ पदों की इस भक्ति-रचना में तीर्थंकर के स्वरूप, उनके स्तवन, समवशरण के विषय में बहुछंदों द्वारा अपनी श्रद्धा की काव्यात्मक अभिव्यक्ति की गई है। यह एक उत्तम ललित ग्रंथ है, जिसके शब्दार्थ सौंदर्य को बड़ी कलात्मक निपुणता के साथ उभारने का कवि ने प्रयास किया है। इसमें ३० दोहों, २८ मत्तगयंदों (सवैये), २० सिंहावलोकन छंदों, ४ कवित्तों, २ दुर्मिल छंदों और १ हरिगीतिका की रमणीयता देखते ही बनती है। 'रमणीयार्थ प्रिपादकः शब्द काव्यम्' - पंडितराज जगन्नाथ का कथन इसमें पूर्णतः चरितार्थ होता दिखाई पड़ता है। 'मम मंतव्य' नाम से लिखी गई अपनी गवेषणात्मक भूमिका में विद्वान संपादक मुनिश्री ने कई महत्त्वपूर्ण पहलुओं को उजागर किया है। कवि के जन्म व रचना-काल तथा रचना के शुद्ध पाठ-रूप पर उन्होंने समुचित साक्ष्यों द्वारा विचार किया है। रचनाकाल अंतः साक्ष्य के आधार पर संवत् १८६५ विक्रमी (अर्थ सन् १८०८ ई.) सुनिश्चित कियाहै। रचनाकार के बारे में शोध करके वे लिखते हैं - "देवाधिदेव रचना के रचयिता श्री हरजसराय जी हैं। वे ओसवाल जाति गदैया-वंश (गोत्र) के थे।......इनका जन्मस्थान आज का पाक सीमावर्ती शहर कसूर (कुशपूर) जिला लाहौर था, जो प्रदेश आजकल पाकिस्तान में आ गया है। इनके जैन होने का प्रमाण उनके वंशज हैं, जो आज भी विद्यमान हैं, तथा कपूरथला (पंजाब) में ग्रंथकार के प्रपौत्र जामाता लाला रामरतनजी जैन विद्यमान हैं। ग्रंथ के अंतः साक्ष्य के आधार पर ये विक्रम संवत् १८७० तक जीवित रहे थे। उस वर्ष उन्होंने देव-रचना नामक ग्रंथ का सर्जन किया था। यह उनकी उपलब्ध अंतिम रचना है।" (देवाधिदेव रचना, मम मंतव्य, पृ. ७/VII, १६-१०-६४)

विद्वान् मुनिश्री ने मूल के साथ उत्थानिका, अर्थ, विवेचन, टिप्पणी, संगति, छंद परिचय आदि देकर अपने अनुवाद और टीका को पूर्णता प्रदान की है। एक रमणीय भक्ति-रचना का बृहत्तर पाठक समुदाय से परिचय कराने के लिए मुनिश्री जी का सारस्वत प्रयास सचमुच श्लाघ्य है। देवाधिदेव-रचना के छंदों की रमणीयता, और शब्दों का नाद-सौंदर्य निम्न पद में दृष्टव्य हैः-

गंधत वर वर्ण वर्ण वर्णों के, वर्ण योग पट कंत छवी।
लेपन शुभ गंध गंध मुख सुंदर, सुंदर वपु झष केतु दवी।
घुम घुम घुमकंत कंत पग, घुंघरू नेवर छण छणकार करै।
गुंजत अभिमाल मालती मोहत मोहत रस श्रृंगार धरै।।

- (देवाधिदेव रचना, पद ५७)

तीर्थंकर देव की अति रमणीय छवि का पान करने को कौन ऐसा होगा, जिसके नैन नहीं तरसेंगे? "रूप रिझावनहारू वह, ए नैनै रिझवार।" वस्तुतः मुनिश्री का यह उत्कृष्ट सटीक संपादन है, जो भक्ति में डूबे सहृदयों को मुग्ध कर देता है।

स्थानकवासी जैन-समाज में समादृत 'वृहदालोयणा' का सुष्ठु संपादन मुनिश्री जी ने किया है। लाला रणजीतसिंह जी उत्तम स्वाध्यायशील सुकवि श्रावक थे, जिन्होंने पद्य-गध में मौलिक और संकलित दोहों-सोरठों का समाहार करके आलोचना की उदात्त भूमिका निर्मित की है। सवैया, गाथा और हरिगीतिका छंदों को भी भावानुसार स्थान दिया गया है। पंडित-रत्न श्री सुमन मुनिजी ने बृहदालोयणा के साथ प्रचलित ज्ञान-गुटका (पद-संकलन) का भी व्याख्यापूर्वक संपादन प्रस्तुत किया है। संग्रह में कबीर, तुलसी, रज्जब आदि संत कवियों के अतिप्रसिद्ध पद भी समाविष्ट हैं। जीवन की अनित्यता और क्षणभंगुरता के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संबंध में कवि का एक चिंतनप्रधान पद दृष्टव्य है:-

किण कारण तैं हठकरी, पवन काय ते प्रीति।
आवै कै आवै नहीं, इनकी याही रीति।।

(ज्ञान गुटका, पद १७)

व्याख्याता के अनुसार – "रे जीव! किस कारण से तूने पवन/श्वास-उच्छवास पर आधारित पवन रूप शरीर पर दृढ़ स्नेह किया है? यह श्वास आये या नहीं, उनकी यही रीति है। आज से दो हज़ार वर्ष पूर्व संत तिरुवल्लुवर ने भी साँसों की अनिश्चितता के संबंध में कुछ ऐसे ही भाव व्यक्त किये थे। संत कवयित्री सहजोबाई की वाणी भी इसी सत्य को स्वीकारती है। यथाः

सहजो गुरु प्रताप से ऐसी जान पड़ी।
नहीं भरोसा स्वाँस का आगे मौत खड़ी।।

(सहजोबाई)

साहित्य-स्रष्टा के रूप में मुनिश्री सुमन कुमार जी द्वारा विरचित चरितों को लिया जा सकता है। पंजाब श्रमण-संघ गौरव आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज की जीवनी लिखकर मुनिश्री ने अपने लेखकीय दायित्व का निर्वाह तो किया ही है, अपनी परंपरा के गरिमामय आचार्य के वर्चस्वी व्यक्तित्व को रूपायित करके श्रमण संघीय इतिहास के एक उज्जवल अध्याय को अक्षरांकित किया है। चरित-नायक की जीवनी के माध्यम से पंजाब की श्रमण-संघीय परंपरा के गौरवशाली इतिहास पर प्रकाश डालते हुए आद्याचार्य श्री हरिदासजी महाराज को श्रद्धापूर्वक स्मरण किया गया है, जिनका समय अठारवीं शताब्दी के मध्य तक पड़ता है। इन्हीं संत शिरोमणि की साधु-परंपरा में पूज्य पं. श्री रामलालजी महाराज के शिष्य बने चरित नायक श्री अमर सिंह जी महाराज। बीसवीं शताब्दी के आरंभ से लेकर आज तक का पंजाब स्थानकवासी श्रमण वर्ग, मुनिश्री के अनुसार, आचार्यश्री द्वारा प्रदान किया गया सुफल ही है। तेजस्वी युग पुरुष के जीवन को पर्याप्त शोधपूर्वक बीस अध्यायों में समेटा गया है। इस जीवन-चरित को पढ़कर प्रतीत होता है कि कैसी विषय परिस्थितियों में अनेक गतिरोधों को झेलकर आचार्य प्रवर ने अपनी परंपरा का रक्षण, संरक्षण और संपोषण करते हुए अपने आचार्यत्व की गरिमा स्थापित की थी। जीवनी में अनेक प्रेरक संस्मरण भी उद्धृत किये गये हैं, जिनमें आचार्य श्री की तर्कणा शक्ति, वाक्पटुता, शास्त्राध्ययन गंभीरता, सरलता, मनस्विता आदि गुणों की उत्कृष्ट झलक दिखाई पड़ती है। जंडियालागुरु (अमृतसर) में हुई शास्त्र-चर्चा के दौरान अपनी सरलता, निर्भीकता और सत्यवादिता से उन्होंने संस्कृत पंडित का हृदय् जीत लिया था। नतमस्तक होकर पंडितजी ने कहा थाः" महाराज! आपकी आज्ञा हेतु मैं श्रमार्थी हूँ, आप जैसे सच्चे पुरुषों से शास्त्रार्थ करना बुद्धिमत्ता नहीं है। इस मताग्रह के वातावरण में सत्य बात कहना महापुरुष का ही लक्षण हो सकता है।" (दे. पंजाब श्रमण-संघ गौरव, पृ.३०) ऐसे महान् परंपरा रक्षक धर्माचार्य के जीवन के प्रेरणाप्रद प्रसंगों को अत्यंत श्रद्धा और भव्यता के साथ चित्रित करते हैं मुनिवर श्री सुमन कुमारजी। समीक्ष्य पुस्तक वस्तुतः जैन साधु परंपरा के महिमामय इतिहास का गौरव ग्रंथ ही है।

वास्तव में यह शब्दांकन एक मनीषी संत की भव्य साहित्य-साधना की झलक मात्र है। उनके संपूर्ण ग्रंथों का अध्ययन पाठक को सारस्वत यात्रा का अलौकिक आनंद प्रदान करता है। पूज्य सुमनमुनिजी स्वाध्याय-मणि हैं, ज्ञान की खनि हैं। अपनी संपूर्ण श्रद्धा, निष्ठा, और सात्विकता के साथ वे विगत पचास वर्षों से वाङ्मय तप करते आ रहे हैं। उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान की अमूल्य कृति-मणियाँ प्रदानकर जैन समाज को उपकृत किया है। सत्य, औदार्य, आत्माभिमान के गुण उन्हें अपने गुरुजनों की शानदार विरासत से प्राप्त हुए हैं। ऐसे तेजस्वी संतों की मनस्विता को लक्ष्य करके ही किसी कवि ने कहा होगा:-

"सदाकत के लहू से सींचकर पाले हों जो गुंचे,
खिज़ाँ में भी कभी वो फूल कुम्हलाया नहीं करते।"

पूर्व निदेशक, आकाशवाणी, चेन्नई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org